

प्रकाशक—

पद्मसिंह जैन,

व्यवस्थापक—श्रीजैनानामप्रकाशकमण्डल,

जोहरी बाजार, आगरा ।

साहायक—

विठ्ठल मदिन भीमती पिस्तावारजी,

लोहामण्डी, आगरा ।

मुद्रक—

पद्मसिंह जैन,

अध्यक्ष—श्रीमज्जेमहाप्रोद्धार प्रिंटिंग प्रेस,

जोहरी बाजार, आगरा ।

किंविद्वक्तव्य ।

प्रिय सुपाठको ! आज कल हमारे जैन समाज के कतिपय सज्जन हुए इस जाल में पंसे हुए हैं कि जैन मुनियों के लिये मुख पर बखिया बांधने की पद्धति निकर है । यह कथन वनका नितान्त मिथ्या है । क्योंकि मुख पर मुखबखिया की प्रणाली सनातन से बली बाली है । इस विषय में "शास्त्र विरारह जैन" भी जिनपरा: सूरिजी महाराज के चरखोपासक-पन्थास भी केसर मुनि गणि पित और मुर्शिदाबाद निवासो भी मुद्रिसागर मुनि द्वारा प्रकाशित "प्रश्नोत्तरार" का निम्नलिखित छठा प्रश्न पढ़िये:—

"श्री भिन भतिपा की थूँकसे आशातना नहीं होने के लिये मुखे मुख प बांध कर थावक थाविका पूजा करते हैं । इसी तरह श्री भिनशास्त्र से आशातना नहीं होने के लिये आपके महान् पूर्वज साधु साध्वीओं मुखे मुखपत्ती बांध के व्याख्यान करने की एक परंपरा से बली भाई माधारी को उत्थापि नहीं किन्तु आपने वा आपके गुरु ने श्री भिन शास्त्र की आशातना करने के लिये उत्थापि है इससे आप अपने पूर्वजों की उक्त समाधारी से विरुद्ध हैं वा नहीं ?"

श्री देवसूरिजी भी स्वरचित 'समाधारी' में लिखते हैं:—

"मुखवद्विषकी भतिलेख्य मुखे बध्वा, भतिलेखपति रञ्जोरणम् ।"

इसी तरह श्री वद्योत गणि जी 'श्री साधवत्स मूल बार प्रवर्ती दार' के २०० वी प्रकरण प्रकाशन करते हैं:—

"तथा जे सामायिकर्षने शास्त्र अभ्यास करवो होय, सो उच्छ्रित क थई मुखपति मुखे बांधो जे दुस्सक उपर दृष्टि राखी जे स्टे स्टे सांखले ।"—१२१ वाँ पृष्ठ ।

प्रिय सुपाठको ! इन प्रमाणों से स्पष्टतया सिद्ध है कि मुख पर मुखबखिया बांधने की प्रणाली सनातन से बली बाली है, भाई भाई है । शक्य है कि उनके मुख पर मुखपति के बांधने की जो आकाशो है वनका उदय होने में उदय है । इनके प्रमाण से निम्नलिखित प्रमाण परोप है:—

श्री लक्ष्मी बन्धन गणि विरचित 'श्री उपराधरद कृष्ण' के २०० वी प्रकरण की वीथिका में निम्नलिखित उल्लेख है:—

"तथा महाराजिमास्मयशा मुखधारक व्यासिजो वने ।

त वा रक्षानिधिषं व. विरोधा हुमाविकार ह"—१३३ वाँ पृष्ठ

अर्थात् मुख में पड़ने हुए मण्डो की एक विधायक वन उदय है । के निमित्त मुख पर मुखबखिया मककते बन्दे । इन और 'विरोधा' वर' के तीसरे भाग में लिखा है:—

ऐसे ही 'ओपनियुक्ति' की चूर्णि में लिखा है और इसी प्रकार "शतपथ" भी लिखा है कि:—

"मोपती विना मी मी मंदेर मौखी, पाणी नां विंदु के धूल पड़े, देशना देना के छीकना मीना गरम वायु बड़े बाहेर ना बाधु विराधना थाय छे तथा आपणी यूको ऊढीने बीमाने स्पर्श छे" १५६ वां पृष्ठ ।

श्रीहेमचन्द्राचार्य विरचित "योगसास्त्र" के गुजगुता अनुवाद में लिखा है:—

"गृहपति, पण मुख मी पडना जीवों नी विराधना डाल माटे छे" २६०-२६१ वां पृष्ठ ।

प्रिय सुपाठको ! उक्त प्रमाणों से निर्विवाद सिद्ध है कि मुख्य पर मुख्यस्थिति जीवरक्षादि के निमित्त बांधी जाती है । आधुनिक अनेक विद्वानों की भी सम्मति है कि जैन मुनियों की मुख्य पर मुख्यस्थिति बांधने की पद्धति निःसन्देह जीवरक्षा के लिये सर्वथा उपयोगी है । इस विषय पर कतिपय मुनिप्रिय विद्वानों की सम्मति द्वारा सम्मति प्राप्त हो गई है । ये इस पुस्तक द्वारा आप सम्मति गणों के कर कम में सम्मति करता हूँ, और आशा करता हूँ कि आप सम्मति गण मुख्य पर मुख्य बांधना बांधने की सनातनोप सखी जैन प्रणाली को स्वीकृत कर निज परके कर्म करने में तत्पर होंगे ।

आश्चर्य 'गिद्धा' गिद्धि भम रिमग्गु'

सौभमंतण्डीय—

शङ्कर मुनि ।

शुद्धाशुद्ध पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	६	तरेग्गान्न	तरेग्गान्ते
७	१४	गुणगुणि	गुणगणी
११	२१	केगुं	केगुं
११	२०	भान्नयने	भान्नयेने
११	११	३०	३१
१६	११	प्राणि प्राण	प्राणिप्राण

“तदा मुने वस्त्रिका”

सम्यग्दर्शनवेदनाचरणसद्रत्नत्रयाराधकं,
पार्श्वपत्यमहर्षिसद्वमहितश्रीकेशिवाचंयमम् ।
क्रीडासक्तमना जगत्सुखकरं दृष्ट्वा प्रदेशी नृपः,
सामूयः सचिवं जगाद् स कथं ‘वन्दा मुने वस्त्रिका’ ॥ २ ॥

टीका—जगत्सुखकरम्—जगदानन्दकारकम्, सम्यग्दर्शनन्यादि-
सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यात्मकमुत्तमं रत्नत्रयं तस्यााराधकम्, पार्श्वपत्ये-
त्पादि—श्रीपार्श्वनाथस्य शासनानुयायिमहामुनिगणेन पूजितं श्रीकेशि-
श्रमणं दृष्ट्वा, क्रीडासक्तः नृपः—इयाने श्रमजिहासेया इतस्ततो विहरन् भूपालः
प्रदेशी, तदा—तस्मिन्समये स, सामूयः—गुणेष्वपि शोषानाविष्कुर्वन्,
सचिवम्—चित्रप्रधानादयम्, जगाद्—उवाच, कथं भो ! मुने—मुनेपरि
षद् वस्त्रालण्डमेतैः ॥ २ ॥

हिन्दी—अनुवाद—जगन् को आनन्द देने वाले, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान,
सम्यक् चारित्ररूप उत्तम रत्नत्रय के आराधक, तथा श्री पार्श्वनाथ के सन्तानों शिष्य
मुनियों करके उपासित श्री केशी श्रमण को देखकर बाण में सैर करता हुआ राजा
प्रदेशी जड़ मूढ़ादि असभ्य शब्दों के उच्चारणपूर्वक चित्रप्रधान से बोला—भो !
इन्होंने मुझपर वस्त्र क्यों बाँध रखा है ? ॥ २ ॥

“तुल्ये यथा वस्त्रिका”

न्यक्तोऽप्यक्षभृतां गणोऽभिलपते सर्वत्र सौख्यं परं,
सिद्धान्तोऽयमिति न्यरूपि विभुभिः सत्यार्थवाक्याधिपैः ।
सूक्ष्मासूक्ष्मशरीरिणां भवति वै हिंसाऽऽननानावृत्ते,
नो तेषां ह्यवने तथापरविधि ‘स्तुल्ये यथा वस्त्रिका’ ॥ ३ ॥

टीका—अक्षभृताम्—अक्षार्णान्द्रियाणि हृषीकपक्षं करणं, स्रोतः खं
विषयीन्द्रियम् इत्यभिधानेऽभिधानात्, तानि विभ्रन्तीत्यक्षभृतः—जगज्ज-

नन्वः । अनेनैकेन्द्रियजीवेभ्य आरभ्य पञ्चेन्द्रियानभिध्याप्यागमानुगारेण
 व्यवस्था कृता भवति । न केवलं पञ्चेन्द्रियजीवानां, किन्तु पृथिव्यामे-
 केन्द्रियाणामपीत्यर्थः । न्यक्तः--सर्वोऽपि, न तु मनुजा एव निर्यञ्च एव
 वेति विधिः । कः ? गणः-माणिमंयानः, अभिलषते यतः सखलोऽपि
 किल जगज्जन्तुनिवहः प्रथमं स्वस्मै सुखमभिवाञ्छति, न तु परस्मै ।
 अतोऽभिलषणक्रियाया आत्मनेपदत्वमात्मनैकित्यप्रकर्षमदर्शनार्थमेवेत्यु-
 क्तत्वाभिः । क ? सर्वत्र-उर्ध्वोपिस्तिर्यग्गुणायां विलोक्याम् । सौम्यम्-
 सुखमेव । परम्-केवलम्, इति-अमुना प्रकारेण । अयं मिद्वान्न काल-
 प्रयेऽप्येकं सारूप्येणावस्थापि निश्चिनवचनम् । न्यरूपि-प्रतिपेदिने न्य-
 सुखारविन्देन । कै ? विभुभि-नीर्थक्यदर्शकः, कुतः विभवन्ति-निर्गमं
 शक्तिशालिनो भवन्ति ? अनन्तशक्तिमत्त्वात् । अथवा, वि-विशेषेण भवन्ति
 सर्वत्र विभवः-सर्वज्ञाः, तेषां हि ज्ञानस्य गिरिबुट्यादिभिरप्रतिहतत्वात्त-
 र्धं व्यापित्वाय, ज्ञानज्ञानवर्तोभ पार्थक्यभेदः । पदभूतार्थः ?
 तत्पार्थक्यत्वादिभिः-सत्यस्य-यथानुसृत्य, अर्था-निर्णयो यस्मिन् साक्ये
 तस्याभिधायकं वा वचनं नास्तीति यादत्, तस्याधिपः-अधिपतिभिः
 सत्यपदार्थाभिधायकभारभीत्वाभिभिर्गति वा । उत्तरार्थं-सुखस्यैतत्ता
 निवृत्त्यर्थं साहचर्यायो निरूप्यते आननानावृते सुखःनाञ्छादिने गति,
 सुखमासुखशरीरिणाम्-सुखमा नेत्रादीनामविषया वायुवातयः, सुख-
 नामकमापि वा, अमुखा-दक्षुरादिलभ्या हीन्द्रियादयः, ते च ते शरी-
 रिण-देहादिगणः संसारिजीवास्तेषाम् । हिमा प्रमत्तयोगात्माण्यप-
 रीपणरूपो व्यापार सा वै प्र वे पादपूर्णे वाः भवतीति । हि-इत्यतः
 तेषाम् सुखमासुखदेहादयाम् अवन रत्नमे ह्यजन्माहमानिहताविमर्षः ।
 यथा नृपते रत्नरा मन्त्रवज्जालिन तथा अयमर्थः-ईदृज्जिह्वदन्तदुपयो-
 ति विधानम् । नो नैवास्तीति यावन्मोक्ष ॥ ३ ॥

स्यर्थः । अनेकविधोन्लाभान् गुणैश्च समीक्ष्य मुखे वस्त्रिकाऽऽगमविधिना
षट्पा-सम्पन्नधारित्वशेषार्थः ॥ ४ ॥

बांधने से एकतो
विपले जन्तुओं
डाक्टरों और
विद्वानों ने भी स्वीकार किया है । इनके अनिश्चित स्वाध्याय करते समय शास्त्र पर
धूक आदि का न गिरना इत्यादि और भी कई लाभ हैं । साथ ही जैन मुनियों का यह
प्रधान चिह्न है, जिसके कारण संयम का उपकार और अहिंसा का पातन होता है ।
अतएव प्रवचन के रहस्य को जानने वाले मुनियों ने आगम विधि के अनुसार मुख
पर वस्त्र को धारण किया है ॥ ४ ॥

—०—

[पूर्तिकार-ध्यामान् पं० ब्रजनाथ मिश्र व्याकरणीयभूषण, धनगरी दरभंगा]

“षट्पा मुखे वस्त्रिका”

—०—

त्यागमयोधिता भवतरी रत्नत्रयीदायिका,

नानां मुखवस्त्रिका विजयते ‘षट्पा मुखे धेवसी’ ॥ ५ ॥

टोका—आस्ये—मुखे, उद्भूता—उत्पन्ना ये समीक्षायास्तेषां षट्-
पन्नं तस्मात् नराणां वाची-रत्निका विद्यायाः शास्त्रस्याऽऽप्यपने-पाठने,
पाठः-पाठनं, तत्कालिकानां बहूनामनेष्वेषामुच्छिष्टादिदोषाणामपहा-
निकारिका, पुनर्जनीया ये आगमास्तेषु बोधिता-विषेयता प्रतिपादिता,
पुनर्भवे-संसारं, तरो-पोतरूपा । पुनः रत्नत्रयी-ज्ञानदर्शनधारित्ररूपा
तस्या दायिका-दात्री, पुनः धेवसी-अतिशयेन महात्वा, मुखवस्त्रिका-
मुखवस्त्रगुणठनपटः जैनानां मुखे षट्पा सती विजयते-सर्वोत्कर्षेण वर्तते ॥ ५ ॥

हिन्दी-अनुवाद—मुख से उत्पन्न वासुकाय की हिसा से बचाने वाली, तथा
पढ़ने के समय उच्छिष्टादि दोषों को दूर करने वाली, जैन शास्त्र के सभी आगमों में
विविध, इस आधार संसार समुद्र के अन्दर महापोत (जहाज) की तरह उद्धार करने
वाली रत्नत्रय को देने वाली ऐसी यह मुखवस्त्रिका जैन लोगों के मुख पर दीर्घी हुई
बहुत प्रशंसनीय तथा शिव मुख को देने वाली विजय का पाना है ॥ ५ ॥

[पूर्तिकार-ध्रिमान् पं० अनन्तरेव शास्त्री काव्यमीर्थ, धार स्ट्ट]

“तुण्डे यथा वस्त्रिका”

ध्वान्तस्य प्रतिबन्धिका सुमचिरा चेन्दोर्यथा चन्द्रिका,
भीतेश्चापि निवर्तिका बलवतां शक्तिर्यथा ह्युत्तमा ।
अज्ञानस्य विनाशिका खलु सती विद्या बुधानां तथा,
जन्तूनां प्रतिबन्धिका विजयते ‘तुण्डे यथा वस्त्रिका’ ॥ ६ ॥

टीका—यथा इन्द्रोः—चन्द्रस्य, सुमचिरा—आह्लाददायिनी चन्द्रिका-
कौमुदी । ‘चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ने’ त्यमरः । ध्वान्तस्य—तमसः, प्रतिब-
न्धिका—प्रतिविनाशिका अस्तीति शेषः । यथा इन्द्रोः ज्योत्स्ना ध्वान्तं
निवारयति । अपि च, यथा बलं—सामर्थ्यं विद्यते येषां तेषां बलवतां शक्ति-
मतां शूराणामित्यर्थः । उत्तमा—ऋकृष्टा, शक्तिः—सामर्थ्यं, भीतेः—भयस्य,
निवर्तिका—निवारिका भयतीति शेषः । यथा शूराणां शक्तिः मानवानां
भीतिं दूरीकरोति । अपरं च, बुधानां—पण्डितानां, सती—शुद्धा, विद्या—ज्ञानं,
अज्ञानस्य विनाशिका—निवर्तिता, खलु—नूनं निश्चयेनेत्यर्थः । यथा विदुषां
विद्या लोकस्य अज्ञानान्धारं नाशयति । तथैव जन्तूनां—क्षुद्रकीटानां,
प्रतिबन्धिका—निवारका तुण्डे—मुखे, वस्त्रिका जैनानामिति शेषः । विजयते—
सर्वोत्कर्षेण वर्तते इत्यर्थः । “विपराभ्यां जेः” इति तट् । यथा चन्द्रिका
तमः विनाशयति, शूराणां शक्तिः भीतिं नाशयति, अपि च विदुषां विद्या
अज्ञानं दूरीकरोति, तथैव जैनानां (मुखवस्त्रिका क्षुद्रकीटादिकान् रक्षति) ॥ ६ ॥

इन्द्रो-ऋगुवाद-जैनो अन्तमा को मनोहर आनन्द देने वाली चन्द्रिका
(चाँदी) अन्धकार को दूर करने वाली होती है, मनमान शूरवीरों की उत्तम
शक्ति, भयभीत मनुष्यों के भय को दूर करने वाली होती है, और निरपय करके
विद्वानों की शुद्ध विद्या जगत् के अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने वाली होती है,
जैसे ही जैन मुनियों की मुखवस्त्रिका (मुखपत्र) छोटे छोटे जीवों को रक्षा
करती है ॥ ६ ॥

यद्वा मुने वस्त्रिका]

[भी-समस्यापूर्वितुमनमाला ।

[पूर्विका-भीमान् आशुकरि व विभूषण बालराज पं० निरवानन्दजी शास्त्री]

तथा

[व्याख्याता-भीमान् विमान् पं० भगवत्कलाउज्जयिनी दार्पण ओषधु,]

“यद्वा मुने वस्त्रिका”

उच्छ्वासद्वसितानिलान्तरपतत्सूक्ष्माऽसुमद्वरजिका,

कालप्रोद्यतमञ्जिकाभिपतनव्याघातसंतजिका ।

ज्ञानापेक्षितपुस्तकादिनिपतस्त्रिष्टे वसंवारिका,

स्थाने स्थानकवासिभिः सुमुनिभिर्षट्चा मुखे वस्त्रिका ॥७॥

टीका — उच्छ्वासद्वसितानिल द्वागोच्छ्वासानः, तरेस्यान्त-
मप्ये ये पतन्त. सूक्ष्माः अमुमन्त - मीमाः तेषां रजिका; तथा, काले-कस्मि-
न्नि समये प्रोद्यता-उपस्थिता या मञ्जिका तस्या अभिपतनं-आकस्मिको
मुखप्रवेश. न एव व्याघातः-विघ्नः, तस्य संतजिका नाशयिषी, अथ च
ज्ञानाय अपेक्षितानि आवश्यकानि यानि पुस्तकादीनि तेषु निपतन् यः
निष्ठेवः-धूस्कारः, तस्य संवारिका-निवारिका, एतादृशी गुणवृत्ती दोरक-
वेष्टिता, पूर्वोक्तलाभवती च वस्त्रिका स्थानकवासिजैनमाधुभिः-सुमुनिभिः,
मुखे, स्थाने-युक्तं, “युक्ते द्वे सोपने स्थाने” इत्यमरः यद्वा धारिता ॥ ७ ॥

हिन्दी-अनुवाद—द्वागोच्छ्वास की वायु में पड़ने वाले जो सूक्ष्म प्राणी उनकी
रक्षण करने वाली तथा किसी बान में अचानक आजाने वाली जो मक्खी वगैरा
आकस्मिक मुखप्रवेशरूपा विघ्न की नाश करने वाली, और ज्ञान के लिये आवश्यक
जा पुस्तकें आदि उन पर गिरने वाले वगैरे की निवारण करने वाली, ऐसी इस गुणवृत्ती
(द्वार वाला व पूर्वाव नाशनाशनी) मुखरजिका की स्थानकवासि जैनमाधुभिः ने
मुख पर-यथार्थिन स्थान पर रक्षण विगता है ॥ ७ ॥

“वद्धा मुखे वस्त्रिका”

सूत्रेश्वरविचारसाररचितेः पूर्णाऽऽहंती वाग्वि,
श्रीतीर्थङ्करसद्व्युहस्तुतिरिव श्रेयोयुगावेष्टिता ।

वैशद्येन विशोभिता बहुतरं दन्तांशुमालेव या.

नित्यं स्यान्कवार्त्तिभिर्लसति सा 'वद्धा मुखे वद्विका' ॥८॥

टीका—स्थानकवासिर्जनसाधुभिर्मृते. वद्धा-धृता सा वसिता.
नित्यं-नितरां, लसन्नि-शोभनं । किमिव सा धृता ? इत्यत्र उपमानग्रंथं वर्णयति
आर्त्तनी-जैनी, कागिन्-काणीन्, यया साधुभिः जैनी वाणी मृते धार्यते तथा
इत्यर्थः । कथंभूता सा ? चारुणा विचारसारेण रचितं, मूत्रैः-आंगै,
पूर्णा इति जिनवाणीपत्रं । वस्त्रिकापत्रं तु चारुणा विचारसारेण रचितं,
मूत्रैः-नन्दुभिः पूर्णा । पुनः किमिव धृता ? श्रोतार्यकराणां सङ्गुण्णा
य स्तुतिरिव । तेषां स्तुतिरपि मृते धार्यते । कथंभूता सा स्तुतिः ? श्रयोभिः
गुणैः दयादिभिः आरोहिता । वस्त्रिकापत्रं तु श्रेयसा-प्रशम्भनेण गुणैः
दोरकेण आरोहिता । पुनः किमिव ? या दन्तागुमात्ता इव-दन्तकिरण-
मान्दव । मायि मृते त्रिपते । कथंभूता सा ? वैराग्येन रच्येततया यदुक्तं
विशोभिना, इत्युपपन्नं, इत्यर्थः ॥ ८ ॥

दिन्दी-अनुवाद—आनन्दबायी जैन साधुओं ने मुग़ल पर जो मुग़लविरोधी
पातल की है वह हमेशा सोचा का प्राप्त होनी है जैसे कि साधुओं के मुग़ल में धारण की
हुई जैन शास्त्रों की बायी सोझनी है। कैसा है वह बायी ? जलम विचारक्य मार करके
रविन मूत्र और आगम करके पूर्ण। मुग़लविरोधक्य में, मुग़ल विचार मार
करके रविन ऐसे मूत्र के अनुसो में पूर्ण। फिर कैसा है ? कि भी लियेचरो की
मदमूत्रको का मुग़ल को लह मुग़ल आगम की हुई साझनी है। वह मुग़ल कैसा है ?
कहना कहना नवा नवाजि मुग़ल न वीजि वीजिजिजि में न वीजि मुग़ल हाँ न
ममम विर कैसा है ? कावन नव वीजि हाँ विरगा क नवम मुग़ल पर पातल की
जलम है कल वर कैसा है वीजि नव वीजि हाँ विरगा मुग़लविरोध है ॥ ॥

“तुण्डे यथा वसिष्ठा”

चाक्षुषं चुम्बति चन्द्रिकाऽनवरतं नो चन्द्रधिम्ये तथा,
हंसी चापि विलासमेति नितरां पङ्केरुहे नो तथा ।
ताम्बूलद्युतिरप्यहो न हि तथा यूनां मुखे शोभते,
भाति स्थानकवासिनां व्रतवतां ‘तुण्डे यथा वसिष्ठा’ ॥६॥

टीका—स्थानकवासिनां व्रतवतां—जैनसाधूनां, तुण्डे—मुखे, यथा वसिष्ठा भाति अर्थात् शोभते, तथा चन्द्रधिम्ये चन्द्रिका अनवरतं—निरन्तरं, चाक्षुषं—चक्षुता मनोहरताविर्यर्थः । नो चुम्बति—न माप्नोति—न शोभत इत्यर्थः । तथा पङ्केरुहे—कमले, हंसी अपि नितरां विलासं—शोभां न एति—माप्नोति । तथा यूनां तरुणानां मुखे, अहो इति आश्चर्यम् । ताम्बूल-द्युतिः—ताम्बूलरागशोभापि न शोभते, इत्यर्थः ॥ ६ ॥

दिग्दी-अनुवाद—शान्तवस्ती प्रती जैनसाधुओंके मुँह पर मुखचन्द्रिका जैसी शोभा देती है वैसी चन्द्र धिम्ये पादनी भी नहीं शोभती अर्थात् वैसी मनोहरता को प्राप्त नहीं होती, पङ्केरुहे (कर्पास में पैदा होने वाले कमल में) हंसी भी वैसी शोभा को प्राप्त नहीं होती, और नो और, लेकिन तद्वत् पुरुषों के मुँह में जान की लाली भी उनकी शोभन नहीं होती, यह आश्चर्य है ॥ ६ ॥

—

[पूर्तिकार—भीमान प० हरिकल्लभजी शुर्मा, व्याख]

“वद्धा मुने वसिष्ठा”

वक्त्रान्निःसृतकोऽप्यवाप्यजवनाद्वायव्यजन्नोऽपि,
रत्नानन्यसुधर्मसूचनपरा निर्वाणसिद्धिप्रदा ।
याधार्य्य लभते हि कर्णविवर्णान्तर्धर्मसवाहकः,
सर्वेऽपि निर्वाणसिद्धिं प्राप्नुयन्ति तस्मात्तस्मात्

टीका—आत्मनो बोधन-ज्ञानं, तस्मिन् रता—
 रतैः, मूरिभिः—श्रीयाचार्यवरणैः; वसत्रान्मुखान्,
 तस्य, कोष्णवाप्यस्य—मन्दोष्णवाप्यस्य; जवनाङ्गेगादिनि
 जन्तुस्तस्येति सुमृश्मजन्तोरित्यर्थः । अपिशब्देनाऽत्रैतद्गोष्ठ्य
 जीवरक्षार्थमपि मुखवस्त्रिकादि धियन्ते, स्थूलजीवरक्षणे तु ।
 रक्षा-पालनमेव, अन्योऽद्वितीयां यः मृधर्मः—श्रेष्ठधर्मः दयैत्यर्थः,
 परेति तज्ज्ञापिका, निर्वाणस्य-मोक्षस्य, मिद्धिं-सफलतां मद
 यस्मात्कारणात् कर्णविवराणां-आवकश्रोत्राणां, अन्नमर्धये, धर्मस्य
 सुकृतैः संचादकैः-प्रापकैः, मूत्रैः-दोषकैः, वद्धामुखे वस्त्रिका । ययार्थम्य
 तथोक्तं लभते-प्राप्नोति; मुखवस्त्रिका हि मुनिषु आवकेषु च दय
 अनन्यतां सूचयतीत्यर्थः ॥ १० ॥

हिन्दी-अनुवाद—आत्मज्ञान में मलग श्री आचार्यों के मुख में नि
 हुई मन्दोष्ण भाक के बेग से वायु के जीवां की भी जो रक्षा गड़पी अद्वितीय
 (दया) के सूचन करने वाली, अत एव मोक्ष मिद्धि की देने वाली, मानों, फानों
 भीतर धर्म को पहुँचाने वाले मूत्रों (दोषों) द्वारा मुख पर बाँधी गई वस्त्रिका यथा
 र्भता को प्राप्त करती है ॥ १० ॥

भावार्थ—अति सूक्ष्म जीवों की भी रक्षा के निमित्त मुखवस्त्रिका को श्री
 आचार्य धारण करते हैं, वह मुखवस्त्रिका दया धर्म को मूत्रों द्वारा सूचन करती
 हुई मत्स्य ज्ञान को दर्शा रही है ॥ १० ॥



[पूर्ति-श्रीमान् ५० गोविन्दरायजी शास्त्री सत्यताथ, महारौनी-झांभी]
 “तुण्डे यथा वस्त्रिका”

धैर्यं दुःखविनाशकं रिपुगणं चिन्तासमुत्तंजकम्,
 वन्धुनां विरहेऽपि मद्रुकरणे वन्धुवधेनिश्चिन्ता

आशायाः प्रतिबोधकं भयहरं नैराशयकाले तथा,
जीवानां परिरक्षणं बुधमता 'तुण्डे यथा वस्त्रिका' ॥११॥

टीका—धैर्यं दुःखस्य विनाशकं अर्थात् धैर्येणैव दुःखानि विनश्यन्ति । रिपुगणे च-शत्रुपक्षे विनाशमुत्तेजस्व-विनाया उदीपकं, यतो धैर्यवतः पुत्रस्य शत्रुसमूहे आनन्दस्फुरणं भवति । बन्धूनां विरहेऽपि मनुष्यस्य भद्रकरणे-श्रेयःकरणे परं बन्धुः धैर्यमेव इति विद्वद्भिः निदिचतम् । यथा जीवानां परिरक्षणं विद्वद्भिः तुण्डे-मुसे वस्त्रिका मता, तथा सर्वतो नैराशयभावे आशायाः प्रतिबोधकम्-वत्पापकं भयहरं च धैर्यमेव इति निर्णीतम् ॥ ११ ॥

दिनो-अनुवाद—धैर्यं दुःख का नाश करने वाला है, अर्थात् धैर्य में ही दुःखों का अन्त होता है । यही रिपुगण में विन्ता को पैदा करने वाला है । माने, शत्रुसमूह में धैर्यवान् पुत्र का आनन्द हुआ जाता है । भाई के अभाव में भो, धैर्य, मनुष्य का कल्याण करने वाला परम बन्धु है, ऐसा विद्वानों का मत है । और जैसे जीवों के रक्षणार्थ, विद्वानों के मतानुसार मुँद पर मुखवस्त्रिका बाँधी जाती है । वैसे ही पूर्ण निराशा में आशा का संचार करने वाला, तथा भय को दूर करने वाला धैर्य ही है, ऐसा निश्चित है ॥ ११ ॥

[श्रुतिज्ञान-भाषा १० शिवदत्तजी जैन मुनि]

‘तुण्डे यथा वस्त्रिका’

हंताः सिन्धुतटे धने मृगपतिः वृक्षोपरिष्ठात् पिकः
गाङ्गे ये मणिरुर्मिका च कटकोऽङ्गुल्यां च हस्ते यथा ।
केपूरं मुकुटं भुजे च शिरसि ग्रैव्यक वे गले,
भान्तयनं स्थल एव मुष्टं मुसग्वे 'तुण्डे यथा वस्त्रिका' ॥१२॥

टीका—हे मुखे ! एते पयोक्ताः पदार्थाः स्थल एव-स ? ११
परि एव मुष्टु भान्ति । के ते ? हंसाः सिन्धुतटे-समुद्रतीरे, गो-
मृगपतिः-सिंहः, वने-अरण्ये, मुष्टु लगति । पिकः-कोकिलः, १२
दृश्यते । मणिः-रत्नं-गाङ्गे-मुवर्णे, कान्ति याति । च पुनः ऊर्मिका १३
अद्रक्ष्यामेव भाति । तथैव कटकः-कंकणं, हस्ते राजते । चकारः १४
पूर्णार्थः । केयूरं भुजे वरं लगति । च पुनः उत्तमाद्रे-शिरसि, मुकुटं भाति १५
वै इति निदर्शयेन ग्रैवेयकं-ग्रीवाभूषणं, गले-कण्ठे, शोभनं दृश्यते । नतं १६
मुखवस्त्रिका तुण्डे-मुख एव-वरं लगति ॥ १२ ॥

हिन्दी-अनुवाद—प्रिय मुख ! ये उक्त पदार्थ अपने १ स्थान पर ही शोभा
देते हैं। जैसे हंसों की पंक्ति समुद्र के तीरे पर ही शोभा को प्राप्त होती है। सिंह
में ही अच्छा लगता है। कोयल वृक्ष पर ही शोभा देती है। मणि मुख में ही
से सुशोभित होती है। मुद्रिका खँगुलों में ही शोभा को प्राप्त होती है। कंक
अच्छा लगता है। केयूर भुजा में और मुकुट मिर पर ही शोभा देता है। कण्ठ पर
ही शोभा देती है, वैसे ही मुखवस्त्रिका भी मुख पर ही अच्छी लगती है ॥ १२ ॥

[गतिः-शोभनं यैः जयदयालुजी शुर्मा, बीकानेर]

“वद्धा मुखे वस्त्रिका”

श्रीमद्भगवद्गीतासुशासनं चितितले सर्वोत्तमं शान्तिदम्,
रक्षा तत्र विधीयते क्षमतां पदकायसंबन्धिताम् ।
मा भृञ्जीववधः कदापि वदनाश्रित्यातयायोरपि,
साधूनामिति दृश्यतेऽत्र विमला ‘वद्धा मुखे वस्त्रिका’ ॥ १३

टीका—श्री.-नदमी शोभा बहिरङ्गान्तरङ्गरूपा । नदस्याम्नीयो
मत्स्यः । रागद्वेषादीनामनयप्रत्ययनीति भिन्नः । नम्येदयमंशः । सुशामन-
शास्यम् । चित्तनतने नूतने, सर्वोत्तमं-सर्वोत्कृष्टं शान्तिदम् । क्षमता का

हि-यस्मात्, तत्र-तस्मिन् मने पट्कायसंबन्धिनो रक्षा विधीयते ।
व साधूनाम्मुखे या विपला घटा वस्त्रिका दृश्यते सा यस्मात्पद्
स्वमुखाभिर्यातिपायोरपि कदापि जीववधः ना भूदिति ॥ १३ ॥

हिन्दी अनुवाद—भी जैन शास्त्र, संसार में सर्वोत्तम शान्तिदायक शास्त्र है
इसमें बहुतों काय के जीवों की रक्षा करने को कहा गया है । मुख्यमें निकलो
में भी किसी जीव को बाधा न पहुँचे इसलिये जैन साधु लोग मुख पर भी
य वस्त्रिका रहते हैं ॥ १३ ॥

—:०:—

“तुण्डे यथा वस्त्रिका”

धूनामुपवेशनादिषु रजोहारस्तथा घ्राणकम् ,
गानां कुरुते यथाहि सततं जैनेऽत्र वै शासनम् ।
स्योद्भूतसमीरणेन वधकाद्रक्षां करोत्यत्र वै,
गानां सुतरां सुगन्धनगता ‘तुण्डे यथा वस्त्रिका’ ॥ १४ ॥

टीका—साधूनाम्मुनीनाम् , उपवेशनादिषु,— शयना दिषु,
रः जीवानां यथा घ्राणकं कुरुते । आस्था-मुख, तदुत्पन्नवायुना
। वधकात् तुण्डे-मुखं, सुगन्धनगता-मूत्रनिवद्धा, वस्त्रिका गुह्यं
रिति ॥ १४ ॥

हिन्दी-अनुवाद—साधुओं के रहते-बैठते जीवों की जो रक्षा होती है उसे भी
जोहार रीतिता है और मुख से वायु निकलने से जो जीववध होता है उसे
वही दुर्ग मुख पर भी वस्त्रिका नहीं होने देती ॥ १४ ॥

[पूर्विकार-श्रीमान् गुनाश्वानी मुनिवत् पदं गन्तव्यं मया]

“वद्वा मुने वस्त्रिका”

उच्छ्वासो यदि गृह्यते निजमुखेऽदत्त्वा च वस्त्रादिकं
जीवानां हननं भवेदिति जिनेराद्यागमे भाषितम् ।
सावद्या कथिता गिरा भगवन्तीसूत्रे तथा भाष्यते,
जन्तूनां परिरक्षणाय विधिना ‘वद्वा मुखे वस्त्रिका’ ॥ ११ ॥

टीका—आद्यागमे—आचारादमूत्रे द्वितीयधनुस्क्रान्ते द्वितीया-
ध्यायने तृतीयोद्देशे श्रीमहावीरश्यामिना भाषितं—कथितं वस्तुनो
वस्त्रादिकं—वस्त्रं इत्थं चादत्त्वा—अदत्त्वा यदि श्वासोच्छ्वासमादिकं गृह्यते
तदा जीवविराघना स्यादित्यतः साधुमाध्वीभिः स्वमुखं वस्त्रादिकं
दत्त्वा श्वासोच्छ्वासादिकं ग्राह्यम् । त-पाठः—

“से भित्तम् वा भिक्कुणी वा उस्सासमाणे वा निस्सासमाणे वा
कात्तमाणे वा दीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डुणं वा वायनिसग्गे वा करे
माणे बुद्धामेव आसयं वा सोमयं वा पाणिणा पडिपेहिच्चान्ना
संजयामेव उसासेज्ज जाव वायंणसग्गे वा करेज्ज ।”—आवा० २, २, ३ ।

“सके देविंदे देवराया किं सावज्जं भामं भासंति अणवज्जं भामं
भासंति गोयमा ? सावज्जं पि भासंति अणवज्जं पि भासंति से केण
हेणं भंते एवं बुद्धं सावज्जं पि जाव अणवज्जं पि भासं भासंति गोयमा
जाहेणं सके देविंदे देवराया सुद्धमकायं अणुजुहिच्चाणं भासं भासंति
ताहेणं...सावज्जं...जाहेणं अणुजुहिच्चाणं भासं भासंति ताहेणं...
...अणवज्जं भासं भामंति...”

इति भगवन्तीसूत्रे वस्त्रादिकमदत्त्वा मापमाणस्य भाषा सावद्या
भवतीति कथितम् । तस्माज्जन्तूनां रक्षणार्थं रिचिपूर्वकं मुखे वस्त्रिका
वद्वास्तीति ॥ १५ ॥

हिन्दी-अनुवाद—मुख पर वस्त्र बिना लगाये यदि भामोच्छ्वास लिये जल
तो उसमें जीवों की हिंसा होनी है । यह बात भी महावीर स्वामी ने आचाराम-आचा-
राद मूत्र में कही है । भगवन्ती सूत्र में भी ऐसी बातों को सावद्या (वारमाहित) यतनाया
है । इसलिये जन्तुओं की रक्षा के लिये मुख पर यथाविधि मुखवस्त्रिका बांधना पारिवी-

“तुल्ये यथा वस्त्रिका”

स्वल्प शोभते चरणायोर्नौ पादुका मस्तके,
विराजते कस्युगे कण्ठे न वा कुण्डले ।
स्य यदेव लोकविदितं तस्मिन् तच्छोभते,
तथा धृता सुघटते तुल्ये यथा वस्त्रिका ॥१६॥

अर्थात्—पृथग्विधः स्वल्प निश्चयेन, चरणायोर्नौ शोभतेऽस्या-
एवं पादुका मस्तके प्रियवाणा न शोभते । शरीरे सुखावस्थादिः,
न विराजते—न शोभते एव तुल्ययुक्तं कण्ठे शोभते,
न शोभते । कुनः ? यस्य वस्त्रिनो चरणानं लोकं व्यवस्थितं
तस्मान्ने प्रियते तदा वस्त्रं स्थानान्तरे न शोभासदम् । हस्तवस्त्रिका
तथा न विराजते यथा तुल्ये—सुखे प्रियवाणा शोभते ॥१६॥

अनुवाद—तुल्य मिर पर ही शोभित होता है, पैरों में नहीं । जूतियाँ
ही शोभती हैं, मिस्तर नहीं । हार गले में ही प्रियता है, दापों में नहीं ।
मैं ही सुलभा है, गले में नहीं । इसी तरह सुखवस्तियाँ भी मुख पर
अच्छी लगती हैं, दाप में निचे रहे तो अच्छी नहीं लगती । हर एक चीज
पर ही रूप मूल मादम होती है ॥१६॥

• -

कार— ध्यानान् पै० गिरधर ॥ शर्मा नदरन, काठगपाटन]

“वद्धा भुवोऽस्थिका”

अस्ति महाप्रबोधविषया मृच्छमात्रिमृच्छा गति-
मृच्छमतग निकायानिगता नायान्नि दृष्टे. पथम् ।

[पूर्तिकार-धीमान् प० आर्येन्द्राचार्य्य रघुनन्दन शास्त्री विधानिधि.
संस्कृतपाठक-धी जैन अनायालय, मानपाड़ा आगरा ।]

“तुयडे यथा वस्त्रिका”

लोकस्याप्युपकारकर्मकुशलाः सिद्धाः महामूर्त्तयः,
नैज्या कीर्त्या हि लोकं प्रददति परमं मोक्षरूपं विनोदम् ।
धक्त्राच्छासस्य गमने भवतु न तथा जीवमात्रस्य हननम्,
शिष्टाः जैनपरायणाः विदधते ‘तुयडे यथा वस्त्रिका’ ॥१६॥

टीका—लोकस्य-संसारस्य, उपकारकर्मकुशलाः-उपकारकर्मणि
चतुराः, सिद्धाः-मुनयः, महामूर्त्तयः-दिव्यमूर्त्तयः, शिष्टाः-श्रेष्ठाः जैनपरा-
यणाः-जैनमतानुयायिनः, नैज्या कीर्त्या स्वकीयनेम्या, लोकम्-जनम्,
मोक्षरूपम्-आवागमनरहितम्, परमम्-उत्कृष्टम्, विनोदम्-आनन्दम्,
प्रददति-प्राप्नुवति । अपि च-वस्त्रात्-सुखात् श्वासारथ्य गमने-श्वात्-
निःसरणे, यथा-यैन प्रकारेण, जीवमात्रस्य-स्थूलसूक्ष्मादिरूपसमस्त-
माणिनः, हननं न भवतु, तथा तुयडे-सुखे, वस्त्रिका-पटवन्धनम्, विदधते-
पारयन्ति ॥ १६ ॥

हिन्दी-अनुवाद—संसार के उपकार करने में जो चतुर हैं, शरीरगति
जिनाकी दिव्य है, अपनी कीर्ति में जिन्होंने जैन मत को मोक्ष का परमात्मस्थ प्रदान
किया है, वेही शिष्ट जैन मुनियों में मुख्य पर सुदृष्टनी दृष्टि में धारण कर रखनी
है कि इनके मुख में निपटनी हुई दवावे किन्तो भी प्रकार के जीवका हनननहीं करेगा।



“बद्धा मुने वस्त्रिका”

मार्गोपान्तवनद्रु मावलिदलच्छायापनीतातपाः,

पूर्वाभ्यर्णसरोवतीर्णपवनव्याभूतदेहध्रमाः ।

पुष्पैर्मन्दमुदः फलेर्भृतधियस्तोषेः कृतक्रीडनाः,

पान्थास्तत्र बहन्ति केलिकमलं ‘बद्धा मुने वस्त्रिका’ ॥ १ ॥

टीका—नव-नस्मिन् जनपदे, पान्थाः-त्रैलोक्यान्वयिनः केन
केनित्यमन-व्यालोक्तहारभिर्यं, बहन्ति-केनिरुपलानां प्रसारणं
स्नानगमना केतिः व्यालोक्तारण्यनाः हारभिर्यो-मानात्तकीर्ति
धारयन्ति । कथंभूताः पान्थाः ? मार्गोपान्तपोरधमवीचयो-समन्वितं
वे वसुधा-उपान्तमा-हृत्ताम्नेपापानि —पट्टिगम्या, दृष्टानि पुनः
केन सायाःजायन्त्या अगतीनः कर्तुंश्च, आनर-धर्मो वेन साया
माने । पुनः कथंभूता ? पूर्णानि-त्रैलोक्यान्वयिनभूतानि, अगतीनि
निवृत्त्यर्थानि, याति सतीति गगोवर्गाणि, वेग्योःवतीर्णं सयावे
कोऽर्थो वसुधा वायुदेव व्यापृतः-कर्तुंश्च तेषां कथंभूता
अथ वेग वेन त्रैलोक्यानी वे । पुनः कथंभूता ? पूर्णं कथं
कथंभूतं कथंभूतं निवृत्त्यर्थानां । पुनः कथंभूता ? वेन कथं
कथंभूतं विन्दुदृष्टानां वेन भोक्तृतायाः । पुनः कथंभूता ?
वेन वेन कथंभूताः । विन्दुवेन, पुनः सादीय-वेन कथंभूता
कथंभूता ; अथवा-वेन कथंभूता ॥ १ ॥

निः, किन्तु दृष्टेः—दर्शनशान्तेः, स्थूलतया-स्थायिनेन, अस्मादशानाम्
निनाम् विविष्टानामावात् न गोचरगताः—न नयनपथान्ताः ।
नदि तेषां मृदुमजीरानाम् सत्तापः किं प्रमाणं ? इत्यारेकायापार—
दर्शितः—केवलज्ञानिभिः सर्वज्ञैः, नियतं-निरिचतम्, दृष्टाः—केवलदृष्टि-
गताः । केवलज्ञानिभिर्दृष्टा इत्यनेन भवतां किमिति चेत् आह—न केवलं
तन्निः दृष्टा एव, अपितु तैरेव—सर्वज्ञैरेव, ते-जीवाः, ज्ञातिना-अम्भ्यं
तन्निःस्वरूपेण ज्ञानविषयीकारिणाः, तन्-तस्यान् कारणात्, तेषां-
जीवानाम्, अनाद्य-रक्षणाय, जैनमुनिभिः—अहिमाधर्मपुरीषैः सर्व-
विभिः, सुखे-सुखोपनि, यस्मिन्—यस्मिन्गण्डम्, यद्वा-दत्तकेण सुखे
गण ॥ १४ ॥

—101—

॥ १४ ॥ सुखे सुखोपनि यस्मिन् यस्मिन्गण्डम् यद्वा-दत्तकेण सुखे

"यद्वा सुखे यस्मिन्"

यद्वा सुखे यस्मिन् यस्मिन्गण्डम् यद्वा-दत्तकेण सुखे

यद्वा सुखे यस्मिन् यस्मिन्गण्डम् यद्वा-दत्तकेण सुखे

यद्वा सुखे यस्मिन् यस्मिन्गण्डम् यद्वा-दत्तकेण सुखे

यद्वा सुखे यस्मिन् यस्मिन्गण्डम् यद्वा-दत्तकेण सुखे

यद्वा सुखे यस्मिन् यस्मिन्गण्डम् यद्वा-दत्तकेण सुखे

यद्वा सुखे यस्मिन् यस्मिन्गण्डम् यद्वा-दत्तकेण सुखे

यद्वा सुखे यस्मिन् यस्मिन्गण्डम् यद्वा-दत्तकेण सुखे

यद्वा सुखे यस्मिन् यस्मिन्गण्डम् यद्वा-दत्तकेण सुखे

यद्वा सुखे यस्मिन् यस्मिन्गण्डम् यद्वा-दत्तकेण सुखे

यद्वा सुखे यस्मिन् यस्मिन्गण्डम् यद्वा-दत्तकेण सुखे

यद्वा सुखे यस्मिन् यस्मिन्गण्डम् यद्वा-दत्तकेण सुखे

(२)

रे रे वञ्चक ! नीच ! निस्त्रय ! महामोहान्धकूपं नयन्,
मामुद्गुगारनिदर्शनादिविविधव्याजेन सन्तोषयत् ।
शत्रून्नेव समेन्द्रियाण्यनुदिनं पुण्यास्यहो पुद्गले,—
महत्तैर्धिगितीव जैनमुनिना 'यद्वा मुखे वस्त्रिका' ॥ २६ ॥

टीका—निजमुखं सम्बोध्य मुनेर्गविरिषम् 'रे रे' इति नीचसम्बोधने,
सम्भ्रमे द्विवचम्, रे रे वञ्चक ! पूर्ण ! नीच ! क्षुद्र ! निस्त्रय ! निर्लज्ज ! मुख !
त्वं वा वस्तुनः महामोहान्धकूपं नयन् कर्त्तव्याकर्त्तव्यविवेकाभावरूपे
महत्पन्धरूपे प्रापयत्, वरिः प्रदर्शनार्थं उद्गुगारस्य अन्तर्वर्ति 'डकार'
रूपस्य, पञ्चान्तरे भगव्यायुद्धेरूपस्य निदर्शनादिरूपो यो विविधव्याजः—
कपटस्तेन सन्तोषयत्—वृत्तिं नयन् पञ्चान्तरे प्रलोभयन् । मुखविशेषणत्वा-
त्पुंसकत्वा । अहो सारचर्चस्वेदे, महत्तैः—मया विस्मृते, पुद्गलैः—विविधै-
र्भोग्यपदार्थैः, त्वं यम शत्रून्नेव इन्द्रियाण्यनु पुण्यासि, यिक्थिगस्तु
पुद्गलैर्वै मुखं वन्धनाहं ज्ञात्वा जैनमुनिना तत्र वस्त्रिका यद्वा
उत्प्रेक्षास्तद्वार ॥ २६ ॥

—:०:—

“तुण्डे यथा वस्त्रिका”

उत्पत्तिप्रलयादिहेतुमन्त्रिलं कर्मावभूयोजितम्,
कैवल्यं प्रतिपित्सुना भवमहागतंऽपि शर्मार्थिना
भागाशीविपराशिमोहविवरान्तर्जीवसम्पातके,
दान्निश्चेतसि दीयतां जिनमुने'स्तुण्डे यथा वस्त्रिका

टीका उत्पत्तिः—भवमाप्ति प्रलय मृत्युमृतायादी येषां
विवरान्तायास्तेषां तन्व तावन्मम अस्ति

दष्टविधम्, ऊर्जितं-अवलं कर्म, अवधूय-त्यक्त्वा, कैवल्यं-मुक्तिं, प्रति-
 वित्तमुना-माधुमिच्छता, मयमहागतेऽपि-संसारस्वरूपे विशालश्वभ्रेऽपि,
 शार्माधिना-मङ्गलामिलापिणा प्राणिनेति शेषः, भोगरूपविपश्चरसमूहानां
 मोहरूपस्य विवरस्य श्रन्तः-अभ्यन्तरे, जीवान्-प्राणिनः सम्भातयति-
 मक्षिपत्येवंशीले चेतसि दान्तिः दीयतां, यथा जिनमुनेः-जैनसाधोः
 तुण्डे-मुखे, वस्त्रिका-वस्त्रखण्डमिति, यथा मुग्धवापन्यपरिहारमूढम्—
 जीवसंरक्षणाद्यर्थं जैनसाधुभिः सततं मुखे वस्त्रिका स्थाप्यते तथैव चेत-
 श्वापन्यादिसकलदोषपरिहारार्थमुक्तविधेन पुरुषेण तत्र (चेतसि) दान्तिः
 दातव्येति भावः । उपमालङ्कारः ॥ २७ ॥

[पूर्तिकार-श्रीमान् पण्डितस्तत्र आ० क० श्री श्री १००८ श्री
 घासीलालजी गदगाज]

“बद्धा मुखे वस्त्रिका”

सम्यग्ज्ञानकपाटगुप्तिपरिखायुक्तं चमासालितं,
 ध्यानप्राहरिकञ्च बोधिनगरं सद्व्रह्मचर्यार्गलम् ।
 कृत्वा कर्मरिपुं न यावदसिना धैर्येण विध्वंसये,
 तावदास्य निदर्शनेति मुनिना ‘बद्धा मुखे वस्त्रिका’ ॥२८॥

टीका-यद्यपि मुखे वस्त्रिकाबन्धनस्य रहस्यमन्यदिनि मुमतीतं तथाप्यह-
 मिदं नृवेत्ते, किं नदिस्थाह-यावत्-यावत्पर्यन्तम्, बोधि-सम्यक्त्वरूपं
 नगरं, सम्यग्ज्ञानरूपकपाटयुतं, गुप्तिरत्र परिखा-कोदाह परिर्वर्तमाना
 परितः गता तथा वेष्टितं, गन्-उत्तमं ब्रह्मचर्यमेव अर्गलं-विष्कम्भोऽर्थात्
 सम्यग्ज्ञानरूपस्य कपाटस्य संयोजकं कीलकं यस्मिंस्तत्, समारूपेण सालेन-
 प्राकारेण-प्राचीरेण युतं समारुतमिति यावत्, तथा विचैकाग्र्यारूप
 ध्यानमेव प्राहरिकः-द्वारपालो यस्मिंस्तथाविधं कृत्वा-विपाय, धैर्यरूपेणा-
 मिना-सहर्गेन, कर्मशत्रुं न विध्वंसये-न पराजये, तावत् आत्म्यस्य-सुरस्य
 निदर्शना-नदुर्गममार्गान्लोकेषु न लविर्तेति शेषः, इति बुद्धयर्थे मुनिना मुखे
 वस्त्रिका बद्धव्यर्थः । उपमालङ्कारः ॥ २८ ॥

श्रीजैनगणसमकाशकमण्डल, भाग २

के

स्थापित करने में हमें जिन पूज्य मुनि महाराजाओं ने और जिन सन्मान्य भावक महोदयों ने अपने अपने योग्य सहायता देने का बचन दिया है, जिनके कि भरोसे पर यह महान् कार्य करने को हम सैयार हुए हैं, उनके शुभ नाम धन्यवाद सहित प्रकाशित करना उचित समझते हैं—

मुनि गण—

- (१) एपाध्याय पं० भी आमाराम जी महाराज
- (२) प्रसिद्ध बप्पा पं० भी चौधमल जी महाराज के गुरित्य पं० भी प्यारबन्धू जी महाराज और पं० भी शंकरलाल जी महाराज
- (३) पं० भी फकीरचन्द जी महाराज के गुरित्य पं० भी पूतलचन्द्र जी महाराज
- (४) भारवाद् प्रान्त के पं० भी जीरावरमल जी महाराज
- (५) जैनमुनि भी परमानन्द जी महाराज
- (६) जैनमुनि भी गोड़ीदास जी महाराज
- (७) पूष्य भी रत्नचन्द्र जी महाराज की संप्रदाय के भी लालचन्द्र जी महाराज

भावक गण—

- (१) भोमान् सेठ वनीराम जी बाठिया भीनालर
- (२) भोमान् सेठ शिवचन्द जी नेमोचन्द जी शिवपुरी
- (३) " सेठ दीपचन्द जी देवल गाँव महो
- (४) बिदुषी बहिन पिरताबाई लोहारमहो आगरा
- (५) भोमान् सेठ गोपीलाल जी मंगराज जी गु० पेथी
- (६) " सेठ गुलाबचन्द जी बग्याचन्द्र जी गुगल्या गु० शिवपुरी
- (७) " सेठ करनमल जी गु० रंतागढ़

अपुनक सहायदाताओं और प्रकाशित हुए उल्लेख्य भावकों को देखकर पाठक गण स्वयं यह अनुमान लगाने कि 'मण्डल' का कार्य रितना बिरबारी और कितने अच्छे ढंग का होगा। हम समझते हैं हमें अपने मुँह से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

आशा है—कार्य को माला और उपयोगिता की देखभाल अन्वय्य पूज्य मुनिगण एवं सम्मान्य सङ्गठन वर्ग भी अपना अपना माय 'मण्डल' की सहायक शैली में निरालाकर कार्य का शीघ्र गति चलाने के कारण बनेगे।

निवेदन—

एचसिह जैन.

रयबन्धावक—श्रीजैनगणसमकाशक

०५०१ ०००

दष्टविधम्, ऊर्जितं-भवत् कर्म, अवधूय-त्यक्त्वा, कैवल्यं-मुक्ति, प्रति-
पितृमुना-प्राप्तुमिच्छता, भवमहागतेऽपि-संसारस्वरूपे विशालरवभ्रेऽपि,
शर्मार्थिना-मङ्गलाभिलाषिणा प्राणिनेति शेषः, भोगरूपविषयसमूहानां
मोहरूपस्य विवरस्य अन्तः-अभ्यन्तरे जीवान्-प्राणिनः सम्भातयति-
प्रतिपत्त्येवंशीले चेतसि दान्तिः दीयतां, यथा जिनमुनेः-जैनसाधोः
तुण्डे-मुखे, वस्त्रिका-वस्त्रखण्डमिति, यथा मुखचापन्यपरिहारमूक्ष्म-
जीवसंरक्षणार्थं जैनसाधुभिः सततं मुखे वस्त्रिका स्थाप्यते तथैव चेत-
श्चापन्यादिसकलदोषपरिहारार्थमुक्तविधेन पुरुषेण तत्र (चेतसि) दान्तिः
दातव्येति भावः । उपमालङ्कारः ॥ २७ ॥

[पूर्तिकार-श्रीमान् पण्डितस्तथा आ० क० श्री श्री १००८ श्री
घासीलालजी महाराज]

“बद्धा मुखे वस्त्रिका”

सम्यग्ज्ञानकपाटगुप्तिपरिखायुक्तं चमासालितं,
ध्यानप्राहरिकञ्च धोधिन्नगरं सद्व्रह्मचर्यार्गलम् ।
कृत्वा कर्मरिपुं न यावदसिना धैर्येण विध्वंसये,
तावदास्य निदर्शनेति मुनिना 'बद्धा मुखे वस्त्रिका' ॥२८॥

टीका-यद्यपि मुखे वस्त्रिकावन्धनस्य रहस्यमन्यदिति धृमतीतं तथाप्यर-
मिर्तदन्वेष्टे, किं नदिस्था-यावत्-यावत्पर्यन्तम्, धोधि-सम्यक्त्वरूपं
नगरं, सम्यग्ज्ञानरूपकपाटगुप्तं, गुप्तिरेव परिखा-कोशाद् परिर्वर्तमाना
पारितः स्याता तथा वेष्टितं, सत्-उत्तमं ब्रह्मचर्यमेव अर्गलं-विष्कम्भोऽर्थात्
सम्यग्ज्ञानरूपस्य कपाटस्य संयोजकं कीलकं यस्मिंस्तत्, चमारूपेण सालेन-
प्राकारेण-प्राचीरेण युक्तं ममाट्टमिति यावत्, तथा विधौकाप्रकारं
ध्यानमेव प्राहरिक-द्वारपालो यस्मिंस्तथापि कृत्वा-विधाय, धैर्यरूपेण-
मिना-मदमेन, कर्मशत्रुं न विध्वंसये-न वगाजये, तावत् आस्यस्य-मुखस्य
निदर्शना-वदग्नंनमपांज्याचं न उच्यतेति शेषः । इति बुद्धयर्थे मुनिना बद्धे
वस्त्रिका वदन्त्यथ । उपमालङ्कारः ॥ २८ ॥